

रंगमहल में नाची राधा

—नीलाक्षी सिंह

तो वह एक सुखी परिवार था, हर लिहाज से सुखी। सुदामा प्रसाद, एम.ए.बी.एल. अपने जमाने के मुँहफट वकली। इस जमाने तक जबान सही-सलामत आबाद थी। हालाँकि धार कुन्द हो चली थी... वक्त की मार। बहरहाल वे बासठ की उम्र में हट्टे-कट्टे थे। पंजा लड़ाने में आज की तारीख में, वे एक तरफ...और दोनों बेटे और तीन पोते एक तरफ हों, तब भी उनका पंजा ही ऊपर रहे, ऐसा हौसला। वैसे ये कोई खास हैरतअंगेज बात न हुई। आजकल के बेटों-पोतों में ताकत होती ही कितनी है। नए चलन में ताकत का केन्द्र शरीर की जगह दिमाग हुआ करता है। दिमाग मजबूत और शरीर पिलपिला। सुदामा प्रसाद अपने ओरिजिनल दाँतों से ईख की मोटी लगगी सटाक से छीलते और पोतों को छोटी-छोटी गुल्लियाँ बनाकर देते, ताकि रस चूसने में सहूलियत हो। उनकी इस जवाँमर्दी से पोते किलकते और बेटों के मसूरों में टीस उठती। ठहाके वगैरह लगाने में वे परहेज नहीं करते और जितनी हसरत से क्रिकेट मैच देखा करते, दूरदर्शन धारावाहिकों के साथ भी वही सलूक होता। शहर में जब केबल के कनेक्शन का फैशन आरम्भावस्था में था, तभी उन्होंने एक पतला सफेद तार अपने घर में खिंचवा लिया था। और 'स्टारप्लस' उनका पसंदीदा चैनल था। सारतः वे स्वस्थ थे, मस्त थे और जीवन को चुस्कियों में पीते हुए भरपूर मजे से जी रहे थे।

दीवानबाई किस्से की तरह चंचल थी। छलिया सुपारी की शौकीन। उसके होंठ के पोर ताजे पान की लाली से सिले मिलते और आँखों के नीचे-ऊपर काजल होता था। एडियों में आलते की लाली और पल्लू के आखिरी छोर में चाभियों का काल्पनिक गुच्छा! दीवानबाई के हाथों में आज भी घर की दीवानी मौजूद थी।

दीवानबाई कहानी की तरह गंभीर थी। उसकी भौंहों के बीचों-बीच चवनी बराबर लाल सिन्दूर की बिन्दी रहती थी जो दिल ढलते-ढलते थोड़ा ऊपर की तरफ तिरछी लिप जाया करती थी। अपनी भौंहों के उठान-गिरान की तरह ही वह घर के पैबन्द और मखमल वाले-दोनों दिनों की साक्षी थी। सुदामा प्रसाद के साथ जब उसकी भाँवरें पड़ीं, तब दीवानबाई बमुश्किल सतरह-अठारह की रही होगी। हालाँकि उस जमाने में वर या वधू की रजा या नामर्जी जैसे सवालों का कोई रिवाज नहीं हुआ करता था। फिर भी देखें तो दीवानबाई की नामर्जी की घोर उपेक्षा करके उनका कन्यादान किया गया था। और इधर सुदामा प्रसाद के घर की लचर हालत चरमावस्था पर थी। सुदामा प्रसाद कानून की दाँवपेंच से भरी खर्चीली पढ़ाई पढ़ रहे थे और उनके स्वर्गीय पिता की धरी-छोड़ी पूँजी से उनकी पढ़ाई का खर्च चल रहा था-लोग ऐसा जानते थे। लेकिन वास्तविकता कुछ और ही थी। सुदामा प्रसाद अपने माँ-बाप के बुढ़ापे की इकलौती सन्तान थे। उनके पिता मरे थे जरूर, पर बिना कुछ छोड़े। उस जमाने में शरीफ जाति की औरतें दिन-दहाड़े बाहरी काम नहीं किया करती थीं। तो उनकी उम्रदराज कुलीन माँ रात के अँधेरे में मुँह ढाँपकर रेलगाड़ियों में मूँगफली, भूँजा आदि-आदि बेचा करती थीं और दिन के उजाले में बचे-खुचे गहने और धराऊँ बरतन। इन दुबले-पतले पैसों से उनकी गाड़ी खिंचती थी। निम्न मध्यमवर्ग की हकीकतें कभी-कभी बड़ी चौंकाऊ हुआ करती हैं। दीवानबाई ब्याह के बाद जब इस हकीकत से रूबरू हुई तो उसकी चेतना सुन्न रह गई। पर जल्दी ही वह इस सदमे से उबर गई क्योंकि इससे बड़ा सदमा सामने था। एक रात, इसी तरह गाड़ियों से चढ़ने-उतरने वाले खेल में ट्रेन से उतरते वक्त सुदामा प्रसाद की माँ के कुलीन अभ्यस्त पैर साड़ियों में उलझ गए और गाड़ी एक सिसकी लेती हुई खच...खच...खचाक से रुकी और दो मिनट बाद फिर चल पड़ी। बिनबिकी मूँगफली, जो प्लेटफॉर्म और पटरियों पर छितर गई थीं उनसे उस रात कुत्तों का अच्छा भोज हुआ, पर तेरह दिन बाद सगे-सम्बन्धियों और ब्राह्मणों को जिमाने के लिए एक छोटे भोज का प्रबन्ध अच्छा न हो सका। माँ की दुआ, वक्त का फेर, दीवानबाई की किस्मत...जो कहें घटना के तुरन्त बाद सुदामा प्रसाद को एक राशन-पानी की दूकान पर छोटी-मोटी नौकरी मिल गयी। दीवानबाई ने खुशहाल, बचपन और सुस्त जवानी के कौमार्यावस्था वाले दिनों के अपने सीखे हुनरों को चमकाया और कुछ सादे कपड़े उसके घर आने लगे और उस घर से जाते वक्त उन कपड़ों पर किस्म-किस्म के फूल पत्ते-डालियाँ कढ़े होते। कशीदे के पैसों से दाल-नमक का जुगाड़ हुआ और बनियागिरी के पैसों से पढ़ाई पूरी हुई। फिर शुरू हुई वकालत और दिन पलट गए।

अब तक की कहानी से एक सवाल बनता है। ब्याह में दीवानबाई की नामर्जी थी, ऐसा क्यों? इसके बारे में थोड़ा ठहरकर। अभी सुदामा प्रसाद और दीवानबाई के कुल में उत्पन्न दोनों बेटों की बात। मूँगफली वाली बुढ़िया की तर्ज पर ही दीवानबाई को भी अपेक्षाकृत अधिक उम्र में मातृत्व सुख मिला। हालाँकि इन दो औरतों के इस संयोग की पृष्ठभूमि निहायत अलग थी। पहली जहाँ ईच्छा, आवश्यकता और प्रयास तीनों की उपस्थिति में भी उम्र ढलने पर माँ बन पाई थी, वहीं दीवानबाई के मामले में इच्छा तत्त्व का घोर अभाव था। फिर भी वह सास जितनी विलम्ब का शिकार होने से बच गई और ब्याह के दस साल बाद उसकी गोद में पहला बेटा आया। फिर दूसरा। दोनों बेटे जमाने के लिहाज से अपेक्षाकृत सपूत निकाले। बहुओं के स्वभाव में चंचलता, स्वतन्त्रता और उग्रता का हलका पुट था जरूर पर घर इस तरह सुदामा प्रसाद और दीवानबाई के शिकंजे में जकड़ा था कि उन्होंने अपनी इन भावनाओं को फिलहाल सुसावस्था में रहने देना ही श्रेयस्कर मान लिया था। बड़े बेटे के एक लड़का था और छोटे के दो। सुदामा प्रसाद इस बेदाग पुत्रों की नस्ल से गदगद थे और सन्तुष्टि थी कि अपने खानदान को कन्या के ग्रहण से अभी तक साबुत बचा लाए थे वे। बेटे पढ़ने-लिखने में कोई खास करिश्मा करते नहीं नजर आए थे तो उन्होंने अपने आरंभिक पेशे की ओर रुख किया। अब बड़े बेटे का एक काम-चलाऊ जनरल स्टोर था और छोटे का एस.टी.डी. बूथ कम फैक्स-जीरॉक्स सेन्टर। पोते अभी दूध चावल के दाँत के बीच की उम्र में थे।

समय अपनी सम गति से चल रहा था, जब अचानक ये घटना घटी। इस घटना के प्रभाव के सूत्र को समझने के लिए बीच में छूट गए उस प्रश्न का उत्तर आवश्यक है। सन् उन्नीस सौ तिरसठ-बासठ। वह जमाना, जब दीवानबाई उलटी पल्ला साड़ी पहने और रिबन से कसकर बाँधी गई दो मुड़ी-मुड़ी चोटियों को कानों पर लटकाते, शहर के इकलौते वीमेन्स कॉलेज में पढ़ने जाया करती थी। तीन मकान छोड़कर चौथे मकान के लगभग हमउम्र पर सम्पन्न विजातीय लड़के से उनका प्रेम हुआ। तत्कालीन अर्थी वाला प्रेम, और प्रेम होने की स्थिति और उसे करने का तरीका भी वही, जो उस जमाने में खूब चला हुआ था। पहले छत से देखा-देखी, फिर गली में कभी आते-कभी जाते नजरों का टकराना, या फिर मेले में, या फिर कॉलेज के बाहर...आदि-आदि। सम्वाद अदायगी के नाम पर एक रोज कॉलेज के बाहर बस नाम वगैरह का आदान-प्रदान हुआ था। बाकी समय बस मूक सन्देशों का ही सहारा था। लेकिन ऐन वक्त पर दीवानबाई के पिता खलनायक के गेट-अप में मंच पर नमूदार हुए। वे पेशे से वकील थे लिहाजा लॉ-कॉलेज में भी पढ़ते थे। और वहीं से उन्होंने एक जहीन पर आर्थिक

मोर्चे पर पस्त हाल जवाँई ढूँढ़ा अपने लिए। फायदा दोहरा। वर के सुयोग्य निकलने की गारन्टी थी और कमजोर हैसियत के पितृहीन वर को अपनी हैसियत की धाक दिखाकर मुक्त में कन्यादान निबटाए जा सकने का मौका भी था। दीवानबाई से न मर्जी पूछी गई ना उसने बताई। बस जिबह होने के लिए अपनी गरदन आगे बढ़ा दी। दूल्हा प्रसन्न, प्रेमी अवाक।

दीवानबाई अग्नि के फेरे लेने के बाद सरद गई। ठंडी सिल पर गृहस्थी की शुरुआत हुई। आरम्भ के दिन तो ताजे-ताजे बहूपने को सँभालने में गुजर गए और ट्रेन वाले हादसे में सुदामा प्रसाद की माँ के गुजरते ही दीवानबाई एकदम से सख्तजान बन गई। वह दिन-भर खटने लगी और अपने आपको काम में लसेड़े रही। पर किसके लिए? किसी और के लिए नहीं। शायद अपने लिए। ताकि यादों से और उन अँधेरों के सपनों से पीछा छुड़ाया जा सके। लेकिन अगर ऐसा संभव हुआ होता तो दुनिया की शायद हर प्रेम कहानी अधूरी रह जाती। कशीदा काढ़ते-काढ़ते उसी उँगलियों में सूई चुभ जाती कभी, तो आह उस तीन घर छोड़कर चौथे घर वाले के नाम की ही निकलती थी। जब कपड़े देने वाले, वापस उन्हें ले जाने लगते और दीवानबाई की मुट्ठी सिक्के और खुदरा रुपयों से भरी होती, तब अनायास उसका दिल चहकता-इन पैसों से उस मंगल मूरत, साँवली सूरत के लिए क्या खरीदा जाए। पर उसी तेजी से उसका दिल बैठ भी जाता और उसके होंठ सूख जाते वर्तमान के ताप से। लोगों ने कहा दीवानबाई की मेहनत रंग लाई...उसका पति वकील बन गया। दीवानबाई ने सुना उसका प्रेमी दिन-रात मेहनत कर रहा है...बाप के बाद उसका कारोबार बखूबी सँभाल लिया है उसने। तो दोनों अपने प्रेम की धार छिपाने के लिए और किस्मत की मार को भुलाने के लिए ताबड़-तोड़ मेहनत किए जा रहे थे! दीवानबाई जब पन्द्रह-बीस मिनट रिक्शे की सवारी कर अपने मायके पहुँचती तो शाम के लुकझुके में उसकी आँखें तीन घर पार वाली छत से चिपक जातीं। कहीं...कुछ...दिखे। शकल न...आकृति सही। एक बार दीवानबाई का बहुत टूट-फूटकर अम्मा-पापा-मामा बोलनेवाला डेढ़ साल का बेटा जब उस घर से दिन-दहाड़े कुछ फूल चुरा लाया था, तब दीवानबाई ने जमकर उसे पीटा था। फूल चुराने के लिए नहीं...बल्कि इसलिए कि दीवानबाई के लाख माँगने पर भी बच्चा उसे वे फूल देने को तैयार न था। बच्चे ने मार खा ली, पर मुट्ठी नहीं खोली। उसके सो चुकने पर दीवानबाई ने ढीली पड़ चुकी मुट्ठी की उँगलियाँ सीधी कीं और पसीने से नहाई बेली की तीन कलियाँ वहाँ से निकालीं। उन तीन मुरझाई कलियों को अपनी हथेली पर खिलाया, आँसुओं से धो-धोकर। दीवानबाई जब उन कलियों को भरपूर प्यार कर चुकने के बाद अपने आँचल में बाँध, सहेज लेने चली,

तब बेली की एक नन्हीं पंखुड़ी उसके निचले होंठ के पोर से चिपकी रह गई। दीवानबाई की जवान आँखों के सामने उसके प्रेमी का घर बसा। उसकी बाल-बच्चेदार, लँदी-फँदी आँखों के सामने उसके प्रेमी के घर किलकारियाँ गूँजी। उसके चलनी के उस पार से चाँद और सुदामा प्रसाद को बारी-बारी से देखती आँखों के सामने उसका प्रेमी विधुर हुआ। उसके दूर की चीजें धुँधली दिखाई पड़ने वाली आँखों के सामने उसके प्रेमी के बाल सफेद हुए और अब...थोड़ा भी जोर देकर या लगातार कुछ देखने पर पनिआ जाने वाली आँखों के सामने उसके प्रेमी के दोनों बच्चे अपने परिवार समेत, कार-दुर्घटना में मारे गए।

छोटा शहर था। कस्बा कहें, बात सीँझते गोश्त की खुशबू की तरह फैलती थी। शहर का एक इज्जतदार भला आदमी और ऐसी विपदा! श्याम! श्याम! स्त्रियों की आँखें भर आई थीं और पुरुषों ने लम्बी आँहें लीं। सुदामा प्रसाद शाम की तफरी से घर को लौटे और उनके बदहवास होंठों पर ये खबर थी। घर में टी.वी. पर अन्ताक्षरी देखने की तैयारी थी। सब अपना-अपना आसन ग्रहण कर चुके थे। बस उनकी ही प्रतीक्षा थी। दीवानबाई चश्मा चढ़ाकर जल्दी-जल्दी सुबह के पाले के चावल बीन रही थी। यही दृश्य था जब मंच पर सुदामा प्रसाद ने आँहें भरते हुए वो नाटकीय संवाद प्रेषित किया। सभी लोग थोड़ा-थोड़ा होंठ खोलकर हक्के-बक्के रह गए। पर सबसे गहरा भाव दीवानबाई के चेहरे पर उभरा। बारीक नजरों से जायजा लें तो उसके चेहरे पर रेशमी डोरे जैसी महीन कई छोटी-छोटी रेखाएँ उभरी थीं। दीवानबाई के आगे के सारे कंकड़ और चावल एक रंग के हो गए। ये तो भेद के मिटने की शुरुआत थी। इसके आगे अपना-पराया, जायज-नाजायज, उचित-अनुचित, सही-गलत...सबके भेद एक-एक कर मिटने लगे उसके आगे से। वह चुपचाप उठकर अपने बिस्तर तक गई। छप्पन साल की उम्र में दो जवान बेटों की माँ दीवानबाई चित्त लेटी थीं। उसकी पलकें पथराई-सी अँधेरे में टँगी थीं। उनपर एक नवजात माँ के तुतले दूध की बूँदें फैल रही थीं। ये वे बूँदें थीं, जिन्हें उसकी युवावस्था ने सँभालकर रखा था अपने पहले प्रेमी से उत्पन्न सन्तानों के स्वागत के लिए और जिन्हें वह वृद्धावस्था की दहलीज पर लुटा रही थी उन सन्तानों को आखरी विदाई देने के लिए। उसके गले से एक बेसुध चीत्कार निकली और हिचकी और आँसू गड्ढमड्ढ पड़ गए। परिवार उसका, इस खबर के बाद धीमी आवाज में टी.वी. देख रहा था। लिहाजा दीवानबाई का विलाप उन्हें उसके कमरे तक खींच लाया। बड़े बेटे ने दीवानबाई को कसकर थामा... दीवानबाई तो भेद मिटाने की मुहिम पर थी... उचित-अनुचित, सही-गलत। ऐसी रुलाई, ऐसी चीख...कौन कहेगा कि जो बच्चे मरे, वे बिना माँ के थे। दीवानबाई के माथे पर बहुओं ने ठंडा तेल

चपोड़ा। तलुवों की मालिश की। पानी पिलाया और उसे अच्छी तरह ढंक-दाब कर सुलाया...दीवानबाई अर्धचेतना में रातभर चौकती रही।

सूरज चैतन्य कर गया। आगे रात की आधी-अधूरी कड़ियों वाली कहानी थी। गड्ढमड्ढ-सी स्मृतियाँ थीं। उसने चिहुँककर अपनी साड़ी का अगला हिस्सा टटोला...कलेजे पर वाला। भीतर के कपड़ों का सूखापन परखा। वहाँ बूँदों की सिम-सिम स्मृति पसरी थी। मतलब? रात भर!

घर गंभीर था। लोग विचलित से थे और तीनों बच्चे आतंकित थे... दीवानबाई से। उसने दरवाजे की ओट से अपने कमरे में झाँकते सबसे छोटे पोते को इशारे से अपने पास बुलाया और आँचल में दुबका लिया। बच्चे ने अपनी नन्हीं उँगली उसकी नाभि में फँसा दी और दीवानबाई ने आँखें बन्द कर लीं। उसकी आँखों से फिर हाहाकार करते आँसू टपकते थे। उसने बच्चे को कसकर चिपकाया अपने से और आँसू पोंछकर अपने आपको मजबूत बनाया और वापस अपनी दिनचर्या में डूबने की कोशिश की।

रात हुई। सब सो चुके थे। दीवानबाई आँखें खोले लेटी थी। सुदामा प्रसाद ने उसकी ओर करवट फेरी तो नाइट बल्ब की शान्त नीली रोशनी में उसे ऐसे जागता हुआ देखकर हड़बड़ा गए। वे धड़फड़ी में उठे और दीवानबाई के ठंडे माथे पर तलहथी रखी अपनी। दीवानबाई ने पुतलियाँ उनकी ओर फेरिं, उसने नीले धुँधलके में उस इन्सान को देखने की कोशिश की जो उसका सबकुछ था... जो उसका कुछ नहीं था। कहाँ कमी रही गई इस रिश्ते में-दीवानबाई के भीतर तेजी से यह सवाल उठा... कहाँ तीव्र आकर्षण था उस रिश्ते में?... उसी जगह से पहले सवाल के जवाब में दूसरा सवाल उठा। सुदामा प्रसाद ने उसे खींचकर अपनी बाँहों में समेट लिया। दीवानबाई के ऊपर एक ठंडी परत चढ़ गई और ठीक उसी वक्त उसने महसूस किया कि उसके भीतर नादानी वाली उमर की वही तपिश अभी तक बाकी थी, जिसे मायके की दहलीज पर चुनवा आई थी वह बरसों पहले...कभी।

पर दीवानबाई और सुदामा प्रसाद की गृहस्थी की नींव ऐसी कच्ची थोड़े न थी! माना कि आधार उनके सम्बन्धों का सीली हुई जमीन पर रखा गया था। पर जमीन सीली हुई थी, दरकी हुई तो नहीं! दीवानबाई फिर घर-संसार के छोटे-छोटे कामों में उलझ-पुलझ गई थी। सुदामा प्रसाद और बेटों को चाँक से नीम का उबला पानी पिलवाना, पोतों की उँगलियाँ पकड़कर सड़क पार करवाना, बहुओं के लिए फेरीवाले से मोल-तोल पर चूड़ियाँ खरीदना, सूखे धनिया के स्वस्थ मोटे-गोटे को सिल पर दररना, चावल और कंकड़ को एक-दूसरे से अलग करना...दीवानाई वक्त की रफ्तार

से कदम साधकर चलना चाहती थी, पर अपने साथ छल करने के जुनून में कभी वक्त से आगे निकल जाती। कभी वक्त को पीछे छोड़ देता। और एक रोज वक्त उसके साथ छल कर गया...घटना के लगभग महीने भर बाद दीवानबाई छोटे पोते को साथ लिए मायके गई। मायके में सुख-दुख, हारी-बीमारी, हर तरह के हिस्सों की गाँठें खुल गई। गप्प की बुनावट जब महीन और तराशी हुई सधने लगी, तभी किसी का ध्यान उचटा। और उस 'किसी' को यह ध्यान आया कि नन्हा मेहमान नदारद है। पल में गप्प-गोष्ठी बिखर गई और खोज मच गई। अब उसे क्या कहें कि दीवानबाई के आँचल में बेली के कलियों की तीन आत्माएँ सुगबुगाई और उसके नथुने ताजी सुगंध से भर गए। सुध-बुध खोई पोते की तलाश में वह सीधे जाकर वहीं खड़ी हो गई, जहाँ पोता मौजूद था। इस बार पौधे बेली के नहीं थे...हरसिंगार की छतनार छाँह थी। अल-सुबह के चू गए हरसिंगार के फूल थे जमीन पर, जिन्हें नन्हा देवदूत मस्ती से बैठा चुने जा रहा था और उसे देखती दो मुग्ध आँखें थीं...जहाँ-तहाँ बेददी से सफेद हो चुके केरा थे, एक दुबली काया थी, लहराती उज्ज्वल धोती की फहक थी, बेदाग सफेद कुर्ता था... और नफासत भरी कोल्हापुर की चप्पल थी। दीवानबाई को धड़कनों का होश न था। उसका जूड़ा ढलक चुका और आँचल छितरा पड़ा था। सीना साँसों को लिए-लिए ऊपर जाता और फिर पछाड़ खाकर खुद को समेट लेता था। उसके खुले पाषाण चक्षुओं ने महसूस किसी के अपनी ओर तल्लीनता से देखकर बढ़ते आते कदमों की आहट को। इतनी नजदीकी थी कि अगर सामने वाले की आँखों से कोई आँसू चूता तो दीवानबाई झटके से चेहरा आगे बढ़ाकर उन आँसुओं को अपनी जिह्वा पर ले सकती थी, उसकी आँखों में कोई कुछ खोज रहा था। किसी ने तो नहीं किया आज तक ऐसा! बाहर-बाहर जिसे जितना मिला... उसके आस-पास के लोग उतने से ही तो मतलब रखते आए थे आज तक। ऐसे भीतर जाकर कुछ खोज निकालना! उसकी इच्छा हुई कि सामने वाले की आँखों को जिस चीज की तलाश थी उसमें, वह उसे और भीतर छुपा ले अपने, ताकि उस चीज की खोज में वे आँखें उसके भीतर तक उतर सकें। आँखों से भी भीतर और भीतर... लेकिन तभी... बीच में ही सामनेवाला चेहरा पीछे मुड़ गया और धीरे-धीरे उससे दूर होता गया। वह मंत्रबिद्ध-सी सूत के माहे में फँसी-फँसी उसके पीछे बढ़ने लगी। घर के चबूतरे तक जाकर आगे वाले पैर थम गए और उसने पीछे मुड़कर दीवानबाई को बैठने का इशारा दिया। दीवानबाई बैठ चुकी। उसके बगल की जगह भी भर गई। उनके ठीक सामने हरसिंगार की वो छाँह थी, जिसके नीचे दो नन्हीं हथेलियाँ लगातार फूल चुने जा रही थी। बच्चा दीवानबाई की मौजूदगी से बेखबर था। दीवानबाई अपने आपकी मौजूदगी से बेखबर थी। सुख से पगे कुछ पला।

बरामदे पर बैठे दो लोगों के घुटने के बीच बित्ते भर से भी कम का फासला था। दोनों की नजरें उस फासले पर ही टिकी थीं। तभी बच्चा उठा। उसे सामने दीवानबाई दिख गई। उसकी फूलों से भरी दोनों मुट्टियाँ खुल गई और हरसिंगार झहड़ कर वापस नीचे बिखर गए। दीवानबाई की बगल से कोई तेजी से उठा और पलक झपकते में वह लम्बी-सी परछाई बच्चे के पास थी। बच्चा तलहथी छितराए हतप्रभ-सा खड़ा था। परछाई झुककर वापस उन फूलों को चुनने लगी। जो काम बच्चा इतने परिश्रम और इतमीनान से लम्बे-लम्बे मिनटों में कर पाया था, वही काम यहाँ क्षणों में सम्पादित कर दिया गया था, बच्चे की हथेलियाँ वापस फूलों से भर गई, बच्चा प्रसन्न कम, विस्मित अधिक था। बच्चे के पास जो परछाई आई थी, वह उलटे पाँव लौट गई। इस बार धीमे कदम और अब वही परछाई दीवानबाई पर पड़ती थी। दीवानबाई ने गरदन उठाकर आँखें मिलाई और वह उठने का प्रयास करने लगी। पर घुटने अकड़े पड़े थे। वह उठ नहीं पाई। उसने पास की दीवार पकड़नी चाही कि तभी एक खुली हथेली उसके सामने बढ़ी, जिस पर हरसिंगार का एक सूखा फूल चिपका था। दीवानबाई के हाथ बगैर सोचे-समझे स्वाभाविक रूप से आगे बढ़ गए, उस हथेली में अपना भार सौंप देने को। दीवानबाई उठ खड़ी हुई। उसने अपनी और सामने वाले की हथेलियों के बीच हरसिंगार की उपस्थिति महसूस की और तीसरे किसी की मौजूदगी से उसे लज्जा हुई। उसने अपनी हथेली वापस खींच ली। एक हथेली सामने बढ़ी ही रह गई जिस पर हरसिंगार... दीवानबाई का कलेजा धौंकने लगा। वह हड़बड़ाकर बच्चे के पास आई और उसे कन्धे से पकड़कर खींचती हुई बाहर ले जाने लगी। बच्चा मुड़कर पीछे देखता रहा अपने शुभचिन्तक को, पर वो जो थी दीवानबाई-मुड़ी नहीं वापस।

दीवानबाई ने आइने में सबसे छिप-छिपाकर अपने-आपको देखा। हैरत, गुस्सा। ठीक माँग के पास से सफेद हो आए केश, आँखों के नीचे... बीच गाल पर काली झाड़ियाँ, पसीना, चिपचिपाहट, चेहरे पर सूजन। इतने दिनों बाद दिखी भी तो ऐसा रूप लेकर! इस खयाल पर धिन-सी आ गई उसे अपने ऊपर। ऐसे वक्त में जब वो शख्स अपने बच्चों की मौत का दर्द झेल रहा था, क्या उसका ध्यान दीवानबाई की शक्त, रंग-ढंग पर गया होगा! पता नहीं उसने उसमें दीवानबाई को देखा भी होगा या उसके मन की दशा ऐसी होगी कि उसे उसमें एक साधारण औरत नजर आई होगी। कोई भी हो सकने वाली औरत। परिचित-अपरिचित। कैसी भी। नन्हें हरसिंगार चुनते शिशु को निहारती उसकी वात्सल्य भरी दृष्टि किसे ढूँढ़ रही होगी? यह सोचते दीवानबाई का सीना भर आया। उसके मन में अपने प्रेमी के लिए पहली बार वात्सल्य जागा...

दीवानबाई मायके से अपने पुराने दिन के सपने वापस लाई थी। अब उसका चौतन्य उसे जबरदस्ती आइने के सामने से अलग करता। हल्का रंग अब अपनी उम्र के मुताबिक नहीं लग रहा था... चटक रंगों की जीवन में वापसी थी। चेहरा सौन्दर्य के तमाम घरेलू नुस्खों की पृष्ठभूमि बना पड़ा था और मन! मन तो मक्खन-सा छताकर पानी के ऊपर-ऊपर तैर रहा था। एड़ियों को झाँवा पत्थर से रगड़ते-रगड़ते दीवानबाई सोचती... अब तक अपने को साफ-सुथरा रखने का...सँवारने का खयाल किए बगैर जिन्दगी कैसे गुजर गई! और अभी भी जब उसमें सामने वाले को एक साधारण औरत ही दिखाई दी थी, तब ये सब फिर किसके लिए! नहीं... वो दीवानबाई को देखकर ठिठकना, उसकी ओर बढ़ता चला आना, वो हाथों का सहारा और वो मौन की भाषा... वो सब सिर्फ और सिर्फ उसी के लिए थे। दीवानबाई के लिए।

अपने पोतों के पीछे थाली लेकर... कौर बनाकर घूमते हुए... उनसे खा लेने की मनुहार करते हुए। उनका मुँह अपने आँचल में पोंछते हुए... अक्सर वह भटकने लगी। आगे-आगे दौड़कर उसे छकाता बच्चा कब कनपटियों पर सफेद बाल वाला रूप धर लेता, कुछ होश ही न रह पा रहा था। कौन रखता होगा उसके खान-पान का ध्यान! रात को सोए में अचानक खाँसी का दौरा आ जाता होगा तो कौन एक गिलास पानी तक लाकर देता होगा! कुर्ते मैले पड़ रहे हैं या चप्पल घिस रही है या वजन कम हो रहा है... कौन दिलाता होगा इसका ध्यान! दीवानबाई सोई रातों को उँगलियों से टटोल-टटोल कर बिस्तर पर कुछ ढूँढ़ती। उसका प्रेमी एक नवजात शिशु में सिमट आता... पूरी तरह से बस उस पर आश्रित। उसका खाना, सोना, पीना, नहाना सब दीवानबाई पर निर्भर। वह भूखा होता तो उसके होंठ दीवानबाई को तलाशते... उसे नींद आ रही होती तो उसकी आँखें दीवानबाई को ढूँढ़ती... दीवानबाई ने अपने सीने को दोनों बाँहों की गिरफ्त में कसकर जकड़ लिया... ये कैसा प्रेम था जो मातृत्व में, वात्सल्य में घुल-मिल जाता था!... क्या औरत एक उम्र के बाद सिर्फ और सिर्फ माँ रह जाती है? क्या औरत हर उम्र में सिर्फ और सिर्फ माँ होती है? नहीं?

रंगमहल से सफेद जड़ी के कशीदे वाला हल्का नीला परदा, उठा। रंगमहल की दीवारें धुले शंख की बनी थी। छोटे-बड़े, सफेद नीले, चितकबरे शंख। कक्ष की बाईं तरफ हाथी दाँत का बना एक नक्काशीदार खम्भा था। उससे लिपटा सोनजूही के लतरों का एक जोड़ा अपने में डूबा हुआ-सा साँसें ले रहा था। दूसरी तरफ चन्दन की महीन लकड़ियों से बना एक पिंजरा था, जिसमें चटख उन्नावी पंखों वाले पक्षियों का एक जोड़ा कोलाहल भरे उत्सव में लीन था। रंगमहल शमादानों की लौ से रौशन था। हवा

के महीन झोंके से कक्ष के श्वेत जहीन परदे इस कोने से उस कोने तक लहराते थे। रंगमहल के रंगोली सजे फर्श पर राधा के एक जोड़ी तलवों की छाया पड़ी और कक्ष के शमादानों की शमा फक से बुझ गई। अब वहाँ शेष रह गई... कक्ष के बीचोंबीच छत से लटकते फानूस की मद्धिम रोशनी। राधा के दाएँ तलवे से फर्श पर एक थाप पड़ी और रंगोली के गुलाबी अबीर का धुआँ कक्ष में तैर उठा। पक्षियों का कलरव थम गया और मृदंग की थाप कक्ष में गूँज उठी। मृदंग की थाप और पंजे-एड़ी की लय...रंगमहल अबीरमय हो उठा और एक-एक करके दीवारों के सारे शंख गुलाबी होने लगे। राधा का महीन पारदर्शी कपड़े के चुन्नों से पटा लहँगा पूरे निखार पर आ गया और कमर की उठान तक उठते-गिरते लहरों से गुलाबी लहँगे के स्पर्श से एक-एक कर शमादान की लौ प्रज्वलित होने लगी। कक्ष की दीवारों के परदे राधा के नृत्यरत शरीर में लिपटने लगे और रंगमहल में कुछ भी न बचा... सिवाय प्रेम और आनन्द के एक गुलाबी आवरण के...

दीवानबाई की आँखें झटके खुलीं, सुदामा प्रसाद उसे कन्धे से पकड़कर बुरी तरह हिला रहे थे-‘अविनाश की माँ...’

दीवानबाई ने विस्फारित नेत्रों से उन्हें देखा। उसकी साँसें तेज-तेज चल रही थीं। जूड़ा बिखर चुका था और आँचल अपनी जगह से हट गया था। अविनाश की माँ-इस आवाज से मृदंग की थाप पर विजय पा ली थी। ‘सपना देख रही हो?’ सुदामा प्रसाद ने पूछा। दीवानबाई कोई उत्तर न दे सकी। वह बस देखती रही अपने पति की आँखों में। फिर उसने अचानक सुदामा प्रसाद को अपने-आप में समेट लिया। बाँहें कसकर उसके गिर्द बाँध दीं। उम्र के इस मोड़ पर ये कैसा भटकाव था। जब उम्र थी, इच्छाएँ थीं, भूख थी, तब जो सब नहीं कर पाई, उन चीजों की ओर अब... इतने सालों बाद! ये तो जीवन का अन्त करीब आ रहा था। अब फिर से एक नया जीवन जीने की चाह! वह भी इतने दायित्वों में बँधी होने पर... समाज, घर, परिवार, रिश्तेदार... एक औरत होने के बावजूद! नहीं। उसे अपनी पुरानी दुनिया में ही रहना होगा। उसी में रमा देना होगा अपने मन को। उसने सुदामा प्रसाद की पीठ को सहलाया अपनी तर्जनी से। उसे मालूम था कि उसके स्पर्श मात्र से सुदामा प्रसाद के मन में हसरतें जाग उठेंगी और फिर... वह हमेशा के लिए अपने को अपनी गृहस्थी में डुबो देगी। लेकिन ये क्या? कोई हरकत नहीं हुई, सुदामा प्रसाद में। उसने अपनी बाँहों का बन्धन धीरे-धीरे श्लथ किया। उसके कानों में सुदामा प्रसाद के खरटि की महीन आवाज आई। उसने सावधानी से पूरी तरह अपने आप को सुदामा प्रसाद से अलग कर लिया। दीवानबाई

ने नीले बल्ब की रोशनी में गौर से अपने पति का चेहरा पढ़ा। उसपर साफ-साफ लिखा था कि सुदामा प्रसाद ये बाजी हमेशा के लिए हार चुके थे। दीवानबाई ने करवट फेर ली और तक्रिए में अपना मुँह छुपा लिया। हर औरत के मन के एक कोने में कोई रंगमहल होता है और हर औरत के मन में एक राधा होती है। दीवानबाई ने आँखें कसकर मूँद लीं।

दीवानबाई ने अपने आपको सजाया और अपने प्रेमी के दरवाजे की घंटी बजा दी। दरवाजा खुला। उसका दुबला और थका हुआ मेजबान चौंक गया। दीवानबाई ने उसके कुछ कहने की प्रतीक्षा नहीं की और भीतर घुसकर अन्दर तक चलती हुई सोफे पर बैठ गई। अतिथि के पीछे उसका मेजबान। दीवानबाई ने उसके चेहरे पर नजरें जमाईं। वह सिर नीचा किए बैठा था। क्षणभर पहले का विस्मय धुल चुका था और अब विषाद की छाया वहाँ निखरकर पसरी थी।

‘आप अपना ख्याल नहीं रखते ना...’ दीवानबाई ने प्रश्न करना चाहा था। लेकिन वाक्य के पूरा होते-होते उसमें से प्रश्नसूचक पुट मिट चुका था और वह एक साधारण, सर्वमान्य उक्ति की तरह सामने था। दीवानबाई ने बिना लाग-लपेट के फिर कहा- ‘अगर मैं अपना ध्यान रखूँ तो?’ सामने वाले ने जैसे कुछ सुना ही नहीं। वह चुपचाप वैसे ही बैठा रहा। कुछ पल गुजर गए।

‘चलती हूँ’ दीवानबाई उठ खड़ी हुई।

घर में एक बार फिर से, पुराने तरीके से शाम ढली थी। बच्चे स्कूल से आने के बाद भाग-दौड़ पकड़ा-पकड़ी में मशगूल थे। बहुएँ जल्दी-जल्दी नाश्ता तैयार कर रही थीं। बेटे अपनी-अपनी दूकान पर थे। सुदामा प्रसाद शाम की सैर की तैयारी कर रहे थे। दीवानबाई ने सन्ध्या जलाई और प्रसाद देने के लिए पोतों को आवाज दी। बच्चे उसे घेरकर खड़े हो गए तो उसने मँझले पोते के सरि पर हाथ रखकर पूछा-‘दादी न रहे तो प्रसाद कौन देगा?’

छह साल के बच्चे ने अचरज से उसे देखा। उसका छोटा भाई चिल्लाया-‘दादी नहीं रहेगी तो हम पूजा करेंगे और प्रसाद किसी और को नहीं देंगे।’ दीवानबाई ने मुस्कुराकर उसके सिर को हलके छुआ, प्यार से। बच्चा किलककर भाग गया। दीवानबाई देहरी पर बैठ गई। कितना छोटा और सधा हुआ जवाब था। उसके सारे अन्तर्द्वन्द्व, ऊहा-पोह, भीतरी उठा-पटक का जवाब इस नन्हें से बच्चे ने कैसे पलक झपकते दे दिया। कितना सही। कितना नपा-तुला। वह नहीं रहेगी, तब भी दुनिया उसी रफ्तार से चलेगी। कोई और ले लेगा उसका स्थान। उसने अपने आप को लोप

कर मंच का जायका लिया। अगर उसकी अचानक मौत हो जाए, असमय तो...? शाम ऐसे ही ढलेगी। बहुएँ चूल्हें में व्यस्त रहेंगी, बच्चे धमा-चौकड़ी मचाते रहेंगे, बेटे अपनी-अपनी दूकान पर और सुदामा प्रसाद टहलने जाने की तैयारी में, सुदामा प्रसाद के पास आकर भी दीवानबाई की सूई अटकी नहीं, सुदामा प्रसाद की दिनचर्या में उसकी क्या जगह थी? सुबह पाँच बजे जागना, सुबह की सैर, अखबार, दाढ़ी बनाना, स्नान, नाश्ता, फिर घर के बगल में बने अपने छोटे से दफ्तर में कानूनी दौँ-पेंच, दोपहर का भोजन, शाम की बागवानी, टहलना, फिर टी.वी. चैनल घुमा-घुमाकर कोई भावनात्मक फिल्म तलाशना, उसे देखना। न मिले तो गाने जिन चैनलों पर आते हों हमेशा, उन्हें चाव से देखना। नए जमाने के कपड़े उघाड़ गाने भी वे उसी आनन्द से देखते जैसे सुरैया और सहगल के जमाने के गाने। दीवानबाई को न तो टी.वी. के चैनलों की जानकारी हो सकी आजतक, न कार्यक्रमों की। और सुदामा प्रसाद! बेटे और बहुएँ तक उनकी जानकारी के मोहताज हैं। टी.वी. देखते-देखते भोजन और फिर पक्की नौंद, दीवानबाई कहाँ थी? कहीं नहीं। न वो; न उसकी परछाई, छोटी बहू ने भीतर से उसे आवाज लगाई। दीवानबाई ने उठने की कोशिश की। पर घुटने जवाब दे गए। उनका दाहिना हाथ सामने बढ़ गया। पर उसे थामने के लिए हरसिंगार की कली चिपकी कोई हथेली वहाँ नहीं थी...

रात ढल चुकी थी। सुदामा प्रसाद सोने की तैयारी में थे। दीवानबाई की साँसें तेजी से उठ-गिर रही थीं। उसका सिर खिड़की से टिका था और हवाओं के झोंके में आगे के बाल जूड़े से निकलकर चेहरे पर फहरा रहे थे।

“बत्ती बुझा देना। आज बारिश होगी। क्या सोच रही हो भई?” सुदामा प्रसाद ने उसे टोका।

दीवानबाई ने वैसे ही खिड़की से लगे-लगे, थोड़ा रुककर कहा “सोचती हूँ अगर मैं ना रहूँ तो क्या होगा?”

हँस पड़े सुदामा प्रसाद “अरे भई, तुम बड़ी भाग्यशाली कहलाओगी। अपने पीछे इतना सुखी घर छोड़ जाओगी। मैं तुम्हें मुक्ति दूँगा। और क्या चाहिए? इसमें इतना सोचने का क्या है?” दीवानबाई चुप रही वैसे ही, तो सुदामा प्रसाद आगे बढ़े।

“मजाक कर रहा था भई। तुम भला अभी जाओगी कहाँ? ये सब क्या सोच रही हो आज अचानक?” उन्होंने दीवानबाई का कन्धा पकड़कर उसे अपनी ओर मोड़ दिया।

“अचानक नहीं...” दीवानबाई की आँखों में कुछ था, जिसे देखकर सुदामा प्रसाद ठगे रह गए। वह बोलती गई “अचानक नहीं... अगर मैं कहूँ कि मैं संन्यास लेना चाहती हूँ तो?”

“संन्यास...” इस बार हँस नहीं पाए सुदामा प्रसाद, हालाँकि बात हँसने की थी सरासर। पर दीवानबाई की आँखों ने उन्हें हँसने नहीं दिया।

“आप हमें जाने देंगे?”

“क्या हो गया है तुम्हें?” कुछ ठिठककर सुदामा प्रसाद बोले “मैं सोता हूँ।”

“नहीं। जो बात मुझे आपको पहली रात बतानी चाहिए थी, उसे आखरी रात तो बता लेने दीजिए।”

सुदामा प्रसाद ने आँखें छोटी कर उसे देखा और उसके माथे पर अपनी तलहथी रखी।

“ताप नहीं है मुझे। मैं ठीक हूँ। शादी से पहले किसी और के साथ मेरे सम्बन्ध थे और मैं उसके पास जाना चाहती हूँ।” दीवानबाई ने मुट्टी में आँचल को दबाया और पैर का अँगूठा जमीन में धँसाया।

“कैसे सम्बन्ध?” ये हथौड़े की गहरी आवाज थी।

“मन के संबंध”

सुदामा प्रसाद ने दोनों हाथों से उसका चेहरा पकड़ा, उसके बालों को भरपूर खींचा और उत्तेजित होकर उसे धकेल दिया बिछावन पर। वे काँप रहे थे बेतरह।

“मैं उसके पास लौटना चाहती हूँ। इस घर के सारे कर्तव्य पूरे कर दिए मैंने। अभी आपने कहा कि अपने पीछे मैं एक सुखी घर छोड़ जाऊँगी। आपने कहा था आप मुक्ति देंगे मुझे। मुझे मुक्ति चाहिए।” दीवानबाई बिस्तर पर हाँफ रही थी। सुदामा प्रसाद झपटकर उस तक पहुँचे।

“मुक्ति तुम्हें मैं देता हूँ” उन्होंने दीवानबाई का गला पकड़ लिया और पूरी ताकत से उसे दबाने लगे। दीवानबाई जूझ रही थी। माथे से, नाखून से। उसे मुक्ति चाहिए थी। लेकिन मरकर नहीं। उसे जीना था। उसने अपने दाँत गड़ा दिए अपना गला दबाते हाथ में, कलाई से थोड़ा ऊपर। बन्धन श्लथ हुआ और वह झपटकर अलग हुई। दोनों योद्धा की साँसें फूल रही थीं। सुदामा प्रसाद जल्दी सँभले। उन्होंने ताबड़-तोड़ मारना शुरू किया दीवानबाई को। उन्होंने दीवानबाई को मार-मारकर चूड़ डाला।

आखिर वे पति थे उसके! इतना तो हक बनता था। दीवानबाई ने उठना चाहा, पर वह भुरभुराकर बिस्तर पर बिखर गई।

दुनिया जानती थी कि सुदामा प्रसाद की पढ़ाई का खर्च उनके पिता की रख छोड़ी सम्पत्ति से चल रहा है जबकि दिनभर इज्जत से कुलवधू बनकर गुजार देने वाली उनकी गरीब माँ अँधेरा होते झोला, तराजू, बटखरा, कागज का ठोंगा... लेकर चल पड़ती थी। इन्हीं दो जिन्दगियों के बीच तालमेल बिठाने के फेर में उसके पैर रेलगाड़ी और प्लेटफॉर्म के बीच लय न साध पाए। क्या दो समानान्तर जिन्दगियों के बीच सम साधने वाली औरत की हमेशा ऐसी ही नियति होती है...! दीवानबाई में हरकत हुई। उस रूह ने, जिसके पैर रात के अँधेरे में ठीक-ठीक प्लेटफॉर्म की थाह नहीं ले पाए थे, दीवानबाई के जिस्म पर हाथ फेरा... सर से पैर तक। दीवानबाई उठ खड़ी हुई। उसने घर के मुख्य दरवाजे की सांकल हटाई। बाहर घुप्प अँधेरा। बारिश तेज हवा, वह नीम बेहोशी में चल रही थी। पता साधा-साधा, मायके के तीन घर बाद। दीवानबाई ने अपनी नई मंजिल के दर पर सर झुका दिया। वह एक बंद दरवाजे के आगे निढाल हो गई। रूह का सफर पूरा हो गया। उसने एक बार फिर दीवानबाई के जिस्म पर हाथ फेरा और वह वहाँ से चली गई। चुपचाप, जहाँ उसकी मंजिल थी, उधर।

आसपास में और भी बहुत बारिश के आसार थे। रातभर बारिश होगी तय था। सुबह क्या होगा? बारिश शायद थम जाए। पर बंद दरवाजे पर रखे इस सवाल का क्या होगा! हो सकता है कल का सवेरा किसी इन्द्रधनुष का साक्षी बने! और अगर... नई मंजिल ने इस सवाल से मुँह फेर लिया तो! फैसला चाहे जो भी हो, जिसके भी हक में हो, इतना क्या कम है कि सुदामा प्रसाद की माँ की आत्मा को मुक्ति मिल चुकी थी।

नीलाक्षी सिंह

नीलाक्षी सिंह का जन्म 17 मार्च, 1977 को हाजीपुर, बिहार में हुआ। नई शताब्दी के बिल्कुल शुरुआती वर्षों में नीलाक्षी ने कहानी लिखना शुरू किया और नई संवेदना और नए शिल्प से लोगों का साक्षात्कार हुआ। नीलाक्षी ने अपनी कहानियों के मार्फत से नई दुनिया को खोला। कहानी के लिए नीलाक्षी को रमाकांत स्मृति कहानी पुरस्कार, कथा सम्मान, साहित्य अकादमी का युवा साहित्य सम्मान से सम्मानित किया जा चुका है। अब तक उनका एक कहानी संग्रह ‘परिन्दे का इन्तजार सा कुछ’ और एक उपन्यास ‘शुद्धि पत्र’ प्रकाशित हो चुका है। दोनों पुस्तकें भारतीय ज्ञानपीठ से प्रकाशित हैं।